

□□□□ □□□□□□

जनसत्ता 7 मई, 2014 : सारे देश में चुनाव के तेज हलचल है और कई जगहों पर, कई व्यक्तियों के कस्मिंत उन मशीनों में बंद हो गई है,

जिन पर राजनीतिकदलों का भरोसा कम होता जा रहा है। वोट डाल कर मतदाताओं ने मुंह मोड़ लिया है। वे जानते हैं कि अब जब तक अगला चुनाव नहीं आता, इस लोकतंत्र से, इससे बनने वाली लोकसभा और उस लोकसभा में बैठने वाले सदस्यों से उनका कोई वास्ता नहीं होगा। मगर उत्तर प्रदेश का आंबेडकर नगर? वह न सोया है न शांत है! उसने अस्वीकृति में अपना हाथ उठाया है और कसबाल बन कर खड़ा हो गया है, जिसका जवाब भारतीय संविधान में नहीं है। भारतीय संविधान की कोख से पैदा हुई न्यायपालिका, विधायिका और चुनावों के सर्वेसर्वा निर्वाचन आयोग के सामने यह चुनौती भी है और कर्तव्य भी कि वे बाबासाहेब आंबेडकर द्वारा लिखित संविधान के पन्ने पलटें और आंबेडकर नगर के सवालों का जवाब दें!

आंबेडकर नगर सर्रिफ इतना पूछ रहा है कि सर्वोच्च न्यायालय के आदेश से वोटिंग मशीन के अंत में जो कनया बटन दिया गया है, उसका मतलब क्या है? मैं जब भी वोट डालने जाता हूँ, लगता है कि लोकतंत्र की सर्जक इस मशीन को मशीन कम और दोस्त ज्यादा लगना चाहिए। कुछ ऐसा किया जा सकता है कि यह मशीन हमारी क्ला और संस्कृति की भी थोड़ी झलक देती हो! कुछ ज्यादा कल्पनाशीलता से इसका रूप-स्वरूप तय करना चाहिए। भारतीय संविधान की मूल प्रती के पन्नों का अलंकरण जब क्लागुरु नंदलाल बोस से करवाया गया था, तब हमें होश था कि यह किताब मशीन से नहीं बनी है, भारतीय संस्कार और क्ला का स्पर्श इसे मलिना ही चाहिए। हमारा वह सावधान सोच कहां खो गया?

मुझे सबसे अखरता है इसका वह आखिरी बटन, जिसका नाम सोचने में भी आयोग ने लोकतंत्र का विचार नहीं किया! किसी सरोकारविहीन नौकरशाह ने इसे 'नोटा' कह दिया, जो सुनते ही कगहरी नकरात्मकता का भाव पैदा करता है। नन ऑफ द बव- तो मतलब यह कि राजनीतिकदलों ने जितने उम्मीदवार चुने और चुनाव आयोग ने जिनहें तकनीकी मान्यता दी, मतदाता के अगर वे सभी अयोग्य लगते हैं तब उसकी मदद में आने वाला बटन! मदद के लिए तो दोस्त ही आगे आता है। फिर क्यों न इसे सखा (सभी खारजि!) कहें और राजनीतिकदलों के यह सीधा संदेश दें कि अगर वे ऐसा उम्मीदवार नहीं चुनते हैं, जसि मतदाता अपना दोस्त समझ सके तो आप मतदाता के लाचार न समझें। उसकी मदद में आने वाला क'सखा' हमने उसे दे दिया है! लेकिन ऐसी लोकतांत्रिक संस्कृति हमारे मन में उगती ही नहीं। करेगस्तान है, जो बंजर के ही विस्तार देता है।

कनपुर के बाहरी इलाके में आता है आंबेडकर नगर, जसि हम कनपुर का कूड़ा भी कह सकते हैं। किसका गुजरात मॉडल हो कि अमेठी मॉडल, दोनों के बहुत बड़ा कूड़ा घर चाहिए होता है- डंपिंग ग्राउंड!

कनपुर के औद्योगिक विकास, चर्म उद्योग का सारा कचरा जहां फेंका जाता है, उसे मायावती सरकार ने नाम दिया आंबेडकर नगर! यह आंबेडकर के नाम का वैसा ही राजनीतिक इस्तेमाल है जैसा नरेंद्र मोदी सरकार पटेल का करते हैं। डंपिंग ग्राउंड की हर कुरूपता से अटा पड़ा है आंबेडकर नगर। यहां पछिले तीस

वर्षों से रह रहे तीन सौ से ज्यादा परिवारों के पास बजिली के खंभे हैं, लेकिन बजिली नहीं है, नालियां खुली पड़ी है, सड़क जैसी कोई चीज नहीं है। बारह फीसद घरों में पीने का पानी कभी-कभार आता है- जब भी आता है, उसकी उम्र पंद्रह मिनट होती है। शौचालय जैसी कोई अवधारणा भी यहां नहीं है। 1999 से श्रीप्रकाश जायसवाल यहां के प्रतिनिधि बन कर संसद में जाते हैं, जो हमारे केयलामंत्री रहे हैं और केयले की दलाली में जो होता है वही उनके साथ भी हुआ है।

इस बार आंबेडकर नगर केलोगों ने तय किया कि वे 'सखा' या 'नोटा' बटन दबा देंगे। वे उन सबको खारजि करना चाहते थे, जो इनका वोट तो चाहते हैं, लेकिन इन्हें नहीं चाहते। जो इनके प्रतिनिधित्व का दावा कर दिल्ली में अपने लिए सारी सुविधाएं जुटाते हैं, लेकिन इनके लिए जीने भर का साधन भी नहीं जुटाते! 'सखा' दबाना वोट न डालना नहीं, बल्कि अस्वीकार की आवाज उठाते हुए वोट डालना है। चुनाव की प्रक्रिया में ही मतदाताओं के हाथ में ऐसा कोई हथियार दिया जाना चाहिए, जिससे वे महसूस करें कि वे राजनीतिक दलों की आपसी जोड़-तोड़ के निर्णायक दर्शक भी नहीं हैं। राजनीतिक दल भी सावधान हों कि मतदाताओं के हाथ में एक ऐसा चाबुक है, जिसे पटक कर वे कभी भी उनका खेल बगिचें सकते हैं।

इस बटन की मांग के पीछे समझाव-मनाव-दबाव की लंबी कहानी है। अंततः चुनाव आयोग की पहल से नहीं, अदालत के आदेश से, पछिल्ले वर्ष नवंबर-दिसंबर में हुए विधानसभा चुनावों में इस बटन को पहली बार जगह मिली। पर न अदालत और न आयोग ने ही इसकी जरूरत समझी कि मतदाताओं के ठीक से समझाया जाए कि यह नया बटन उन्हें क्या-क्या अधिकार देता है और इसे दबाना वोट न देना या अपना वोट रद्द करवाना नहीं, बल्कि बर्बाद मजबूती से वोट देना है! इस बटन के पैरोकारों ने इस बारे में खासी स्पष्टता रखी थी, लेकिन उनकी बात का तकनीकी पक्ष स्वीकार करने से आगे न आयोग बर्बाद, न न्यायालय!

मगर आयोग के ही आंकड़ों का अजीब कहानी कहते हैं। जिन पांच राज्यों में, 2013 में विधानसभा के चुनाव हुए, उनमें करीब पंद्रह लाख मतदाताओं ने यह बटन दबाया। राजधानी दिल्ली में, जहां आम आदमी पार्टी के रूप में उनके सामने एक कनया विकल्प भी था, वहां 49,730 मतदाताओं ने 'सखा' बटन दबाया।

छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश में, जहां भारतीय जनता पार्टी अपनी लगातार तीसरी जीत का जश्न मनाते नहीं थकती, क्रमशः 3.56 लाख और 5.9 लाख मतदाताओं ने 'सखा' बटन दबाया। राजस्थान में 5.67 लाख मतदाताओं ने ऐसा ही किया। इसका मतलब क्या निकला जाए? यही न कि इस बटन पर हमारे मतदाताओं का भरोसा बन रहा है।

हर संवैधानिक व्यवस्था की तरह प्रातिनिधिक लोकतंत्र भी कई आंतरिक बरिधों से घिरता गया है। चुनाव-प्रक्रिया की शुरुआत से ही एक सवाल खड़ा होने लगा था कि चुनावों के पैसा, डंडा, गुंडा, जाति, संप्रदाय आदि की पकड़ से कैसे बाहर लाया जाए और कैसे ऐसा हो कि हर स्तर पर चुना गया प्रतिनिधि अपने मतदाताओं के प्रति जवाबदेह हो। जयप्रकाश नारायण ने दो बातें रखी थीं: पार्टियों के उम्मीदवारों के चयन में मतदाताओं की राय लेनी चाहिए, और कोई ऐसी व्यवस्था भी बननी चाहिए कि चुनाव जीतने के बाद भी सांसदों-विधायकों पर मतदाता का अंकुश रहे। इसमें से ही यह परिकल्पना निकली कि चुनाव की मशीन में एक बटन ऐसा भी हो, जिसे दबा कर मतदाता बता सके कि पार्टियों ने जितने भी उम्मीदवार खड़े किए हैं, उनमें से कोई भी उसे योग्य नहीं लगता।

वर्षों पहले एक चुनाव याचिका की सुनवाई करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने भी स्वीकार किया कि उम्मीदवारों के चयन में 'पॉप्यूलर कंसल्टेशन' की जयप्रकाशजी की मांग बहुत सही थी। लेकिन हमें यह समझना चाहिए कि इस परिकल्पना के आधा-अधूरा लागू करना, इसकी संभावनाओं को पूरी तरह खत्म

करना है।

इस बटन की सार्थकता तभी बनेगी जब आयोग यह भी बताएगा कि जिस पार्टी के उम्मीदवार को कनिश्चित फीसद से कम वोट मिलेंगे, उसका चुनाव रद्द हो जाएगा। हालांकि आज भी नश्चिति फीसद से कम वोट मिलने पर उम्मीदवार की जमानत जब्त हो जाती है। मतलब बात पैसों पर आकर खत्म कर दी गई है। इससे पार्टियों या उम्मीदवारों पर कोई दबाव नहीं बनता। इसलिये पार्टियां लोकतंत्र पर कुठाराघात करने वालों को विधानसभा या लोकसभा में भेजते नहीं हचिक्तीं; बाहुबलियों को जीत की गारंटी माना जाता है और वोटकटा या डमी उम्मीदवार खड़े किए जाते हैं। स्थिति यहां तक आ पहुंची है कि वोटिंग मशीन में जतिने नाम दर्ज नहीं हो सकते, उतने लोग कनिश्चित क्षेत्र से खड़े हो रहे हैं।

बनारस लोकसभा क्षेत्र का क्रमांक है 77 और यहां से खड़े हैं 77 उम्मीदवार, जबकि चौरानबे लोगों ने उम्मीदवारी का पर्चा खरीदा था। क्या यह लोकतंत्र के मजबूत होने का प्रमाण है या इस बात का कि चुनाव-प्रक्रिया बाजार में नीलामी के लिये खड़ी कर दी गई है? अगर दूसरी बात सही है तब चुनाव आयोग को कैसे नींद आ सकती है कि पैतीस सौ करोड़ रुपए के खर्च से, फौज-पुलिस के अंधाधुंध इस्तेमाल से वह जो चुनाव करा रहा है, उसका आधार ही इतना खोखला है! इसलिये 'सखा' बटन को तेज दांत देने की जरूरत है, ताकि जरूरत पड़े पर वह काट सके।

करना यह होगा कि जिन्हें नश्चिति फीसद से कम वोट मिलेंगे, न सिर्फ उनका चुनाव रद्द होगा, उनकी जमानत जब्त होगी, बल्कि अगले दो चुनाव तक वे उम्मीदवार भी नहीं बन सकेंगे। तब पार्टियों को सावधान रहना होगा कि बेईमानी के इरादे से उम्मीदवार खड़े न करें। क्या तो उस पर आगे के लिये रोक लगा जा सकेगी। ऐसी स्थिति बन सकती है कि पार्टियों के पास उम्मीदवारों का टोटा पैसा जा जाएगा। दूसरी तरफ यह व्यवस्था भी हो कि अगर लगातार दो चुनावों में, किसी निर्वाचन क्षेत्र से किसी पार्टी को नश्चिति फीसद से कम वोट मिले तो वह उस चुनाव क्षेत्र से तीसरे चुनाव में उम्मीदवार खड़े नहीं कर सकेगी। अगर ऐसा हुआ तो पार्टियों को उम्मीदवारों के चयन में इसका ध्यान रखना ही होगा कि उनकी अपने मतदाताओं पर इतनी पकड़ तो हो ही कि वे अल्पमत वोट के शिकंजे में न फंस जायें, क्योंकि इससे उम्मीदवार भी मारा जाएगा और पार्टी भी!

तीसरी स्थिति यह बनेगी कि अगर किसी निर्वाचन क्षेत्र में 'सखा' बटन ही सबसे ज्यादा दबाया गया तो वहां का चुनाव रद्द हो जाएगा और दोबारा चुनाव होंगे। तब सारी पार्टियों को न उम्मीदवारों के साथ चुनाव में उतरना होगा, क्योंकि पुराने सारे उम्मीदवारों को मतदाता ने खारज कर दिया था। आज भी ऐसा होता है, लेकिन तभी जब बोगस वोटिंग का व्यापक आरोप सिद्ध हुआ हो या जहां उम्मीदवार की मृत्यु हो जाए। उम्मीदवार ही नहीं, लोकतंत्र की मृत्यु भी होती हो तो चुनाव रद्द होने चाहिए। आज की चुनावी व्यवस्था में इतना जोर दिया जा तो दलों को मर्यादित करने, चुनाव-खर्च पर अंकुश रखने और मतदाता की भूमिका को सशक्त करने में काफी मदद मिलेगी।

यहां तक आयोग पहुंचे तो इसके आगे के दो जरूरी कदमों के लिये समाज को तैयार करने का काम शुरू करना होगा- प्रतिनिधि विपसी का अधिकार और लोक-उम्मीदवार की दशा में जाने की तैयारी! संसदीय लोकतंत्र की पोशाक गंदी हो चली है। इसे धोकर नया करने की जरूरत है। 'सखा' इतनी संभावनाओं के साथ हमारी मशीन पर आ गया है। अब जरूरत है कि आयोग इन संभावनाओं को सिद्ध करने की शुरुआत करे। आंबेडकर नगर के सवाल का जवाब यहां से शुरू होता है।

फेसबुक पेज को लाइक करने के लिए क्लिक करें- <https://www.facebook.com/Jansatta>

ट्विटर पेज पर फॉलो करने के लिए क्लिक करें- <https://twitter.com/Jansatta>